

जोड़ा ताल बुलाता है

प्रियंका चौहान

कवि प्रवर कैलाश गौतम जी का गीत-संग्रह 'जोड़ा ताल' तत्कालीन समाज के रागात्मक एवं सांस्कृतिक परिवेश को पूरी आत्मीयता से प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ उद्घाटित करता है, जहाँ आपसी स्नेह भी है और सौहार्द भी, जीवन को सोल्लास जीने की ललक भी है और सकारात्मक सोच भी और प्रकट होता है इन सबके बीच एक अद्भुत सामन्जस्य। 'जोड़ा ताल' में कैलाश जी के पास परम्परा की सुखद झाँकियाँ भी हैं और समय के साथ उलटी-पलटी परिस्थितियाँ भी और सामने आती हैं अपनी सम्पूर्ण विवेचना के साथ अलग-अलग छवियाँ। यहाँ पर वन-प्रांतर के फूल-पौधे भी हैं, तितली-भौंरे, पशु-पक्षी, नदी-नाव, रेत-पहाड़ एवं धूप-चाँदनी भी और साथ-साथ रूपायित होते हैं अनेकानेक आल्हादकारी मनोरम एवं वैभवशाली परिदृश्य। ऐसे में लगता है कि मानो 'जोड़ा ताल' इतिहास का साक्षी बनकर आज की पीढ़ी को सम्मोहक एवं सुकूनभरे प्राकृतिक वातावरण में जीवन जीने की कला तथा उसकी महत्ता का प्रासंगिक संदेश दे रहा हो ताकि मान-सम्मान एवं धन-धान्य की धुन के चलते वर्तमान जीवन-जगत में शुष्क होते राग, धूमिल होते रंगों, टूटती तारतम्यता एवं नष्ट होती जा रही अमूल्य प्राकृतिक संपदा को पुनः अनुप्राणित एवं संस्थापित किया जा सके। इस प्रकार से यह काव्य मंजरी प्राकृत कला एवं उसकी महत्ता का आभास तो कराती चलती ही है, तुलनात्मक रूप से समय के साथ आये बदलाव एवं विकृतियों से निजात पाने हेतु अपनी सांस्कृतिक थाती को संजोए-सँवारे रखकर रागात्मक जीवन को प्रकृति की आभा में रचाए-बसाए रखने की आवश्यकता पर भी बल देती लगती है।

'जोड़ा ताल' में प्रकृति की अद्भुत छटा एवं मानवीय संवेदना के मध्य अनुटे रिश्ते के साथ-साथ गीत-प्रवाह में अनुगूँज पूरी तरह से सुनाई पड़ती है। साथ ही इन रचनाओं में रागात्मक आवेग स्वतः ही प्रेषित होता चलता है और केंद्रीय सोच के साथ-साथ उसकी आत्मीय गढ़न की आकर्ष झनकार भी गूँजती प्रतीत होती है—

काली-काली घटा देखकर/जी ललचाता है/
लौट चलो घर पंछी/जोड़ा ताल बुलाता है/
सोंधी-सोंधी/गंध खेत की/हवा बाँटती है/
सीधी सादी राह/बीच से/नदी काटती है/
गहराता है रंग और/मौसम लहराता है।

यहाँ पर अपनी माटी का खिचाव, मनोहारी एवं प्राणदायिनी प्रकृति की गोद में जीवोत्सव मनाने तथा आज के मश पीनीकरण एवं बाजारवाद की सर्वव्यापी संवेदनहीनता एवं अवसाद को छू मंतर करने के लिए 'जोड़ा ताल' जिस प्रकार से गुहराते हुए गीतायित होता है उससे कवि की जातीय अस्मिता एवं भावप्रवणता बड़ी ईमानदारी से उजागर होती है। साथ ही इसमें तत्कालीन समय का जो रुचिकर, आनन्दप्रद एवं चुम्बकीय परिवेश व्यंजित होता है उससे समाज के एक सदस्य के रूप में कवि कैलाश जी का सामयिक भावबोध एवं ऐसे परिवेश से उनका आत्मीय जुड़ाव एवं अनुशंसा का भाव साफ-साफ झलकता है। सो इस सबका का श्रेय दिया जा सकता है उस समय की परिस्थितियों को, रागात्मक जीवन-व्यापार को मानवीय रिश्तों के प्रति सच्ची संवेदनशीलता को तथा कवि की निजी अनुभूति, बात को कहने के विशिष्ट अन्दाज एवं चित्रांकन की मर्मस्पर्शी शैली को। इसे निश्चय ही 'पानी से पाथर काटने की सूक्ष्म अभिव्यक्ति एवं स्वीकारोक्ति' तथा 'इस भारतभूति की महानता और इसके ऐतिहासिक सानुबन्धों' को विरासत के रूप में संरक्षित रखने का सार्थक प्रयास ही कहा जा सकता है।

इस संकलन का प्रथम गीत 'आना जी फिर आना गीत' अपने प्रभावशाली शब्द संयोजन तथा तरल प्रवाह के साथ कवि के भावाकुल मन की प्रबल चाह को प्रकट करता लगता है, जहाँ भारतीय लोक मानस का मिलजुल कर तथा हँसी-खुशी से रहने और अपने पर्व-त्यौहार, वासन्ती सुषमा, झील-झरने, खेत-बागान एवं जंगल-घाटी के प्रति अनुराग एवं पीढ़ी दर पीढ़ी अनुबन्धों का बड़ा ही मर्मस्पर्शी चित्रांकन देखने को मिलता है—

आना जी फिर आना/गीत/इन्हीं गलियों में।
तुम पर्व लिए आना/त्यौहार लिए आना/

तुम फागुन में हँसता/कचनार लिए आना/
हो जाना/झील-ताल/रेत की मछलियों में।

गाऊँगा/टेरूँगा/नाम से पुकारूँगा/
तुम/मुझे संवारोगे/मैं तुम्हें संवारूँगा/
खेतों में बागों में/फूलों में/कलियों में।

कैलाश जी ने तत्कालीन घर-गाँव की परिपाटी को भी देखा-समझा है और उसमें हो रहे हल्के-फुल्के परिवर्तन को भी, उन्होंने सांस्कृतिक पहचान के साथ भारतीय समाज के जीवन-दर्श को भी बखूबी जाना है और समाज के लोगों की भिन्न-भिन्न मनःस्थिति को भी। इतने बड़े फलक पर एक सजग मनीषी की भाँति दृष्टि रखते हुए वह उस समय की विगड़ती सामाजिक एवं आर्थिक स्थितियों से बड़े ही व्यथित दिखाई पड़ते हैं—

सूने-सूने, घर आँगन/गलियारे टीस रहे/
खुली पीठ पर नागफनी/अँधियारे टीस रहे/
टीस रहे हैं नाव-नदी/हिचकोले आधी रात।

तितली पकड़े/तिनका तोड़े/लहर लपेटे से/
बढ़ती है तकलीफ आँच में/देह समेटे से/
दोनों करवट ओले और/फफोले आधी रात।

क्या होगा अब/राम न जाने/ऐसी हवा चली/
उलट पड़े/गोकुल-बरसाने/उलटी कुंज गली/
गीतों के/आँगन में/मीठा उत्सव ठहरा है।

हालांकि कैलाश गौतम जी किसी असहाय-गरीब की पीड़ा से तथा समाज के उलटे परिदृश्य को देखकर व्यथित तो हो जाते हैं किन्तु निराश नहीं। वे भविष्य के प्रति आशान्वित भी दिखते हैं। और जिजीविषु भी। जीवन जगत के प्रति उनका यह सकारात्मक दृष्टिकोण हारे-थके व्यक्ति को राहत भी प्रदान करता है और उसे आशा एवं उत्साह से भी भर देता है। इसी सकारात्मक चिन्तन के चलते उनका अटूट विश्वास है कि समय बदलेगा और बदलेगी वो परिस्थितियाँ जो मानव-मन को पीड़ित एवं कुण्ठित करती हैं और फिर लौटेंगे भरे-पुरे दिन अपनी गुनगुनाहट के साथ—

गेहूँ के/गदराए दूध भरे/दाने से दिन/
लौटेंगे गलियों से/ताल के मखाने से दिन/
घंटों बतियाये/चाँद इन्हीं ताड़ों से देखना।

पिघलेगी/यह वर्फ टूटकर पिघलेगी/
फूटेगी हरियाली/काँपल निकलेगी/
बाँयेंगे हम गीत कछारों/फागुन आने दो।

अच्छे दिनों की आशा एवं कामना के साथ कवि जीवन को जिन्दादिली से जीने की प्रेरणा तो देता ही है, वह यह भी संकेतित करता चलता है कि जीवन-समर में आने वाली परेशानियों-दुश्चारियों से घबड़ाने की जरूरत नहीं है और न ही ऐसी स्थिति में पलायन करना उचित होगा। बल्कि जन-जीवन को समय एवं परिस्थिति के अनुसार अपनी जीवन-यात्रा में सन्तुलन स्थापित करना होगा और साथ ही सावधानियाँ भी बरतनी होंगी ताकि कुशलतापूर्वक अपनी मंजिल तक पहुँचा जा सके—‘मीठे मुँह अच्छे दिन/बार-बार आना/काठ का खिलौना हूँ/आग से बचाना’।

जीवन-समर में सावधानी के साथ सन्तुलन एवं सार्थक प्रयास की जितनी आवश्यकता है उतनी ही महत्ता जीवन-जगत् के सच को जानने की भी है। जहाँ तक कविवर कैलाश जी की बात है तो वह इन सच्चाइयों से भली प्रकार परिचित लगते हैं। ऐसा नहीं है कि वे सच्चाइयों से सिर्फ परिचय बनाते हों, वह तो इनसे कुछ-न-कुछ सीख लेते और देते प्रतीत होते हैं। तभी तो उनकी लेखनी जीवन के दो टूक सच का रूपायन बड़ी ही संजीदगी के साथ करती लगती है—‘हम होंगे/जैसे कल होगा/टूटा

पुल अखबारों में'।

जीवन दर्शन का इतना सहज प्रस्तुतीकरण बड़ा ही अनूठा है। इसे कैलाश जी की बेजोड़ कारागरी ही कहा जायेगा क्योंकि उन्होंने जीवन के इस सच को अत्यन्त ही सरलीकृत कर एक प्रेरक संदेश भी दिया है जीवन को जीने का। पुल की तरह परहित का कार्य कर जीवन को सफल एवं यादगार बनाया जा सकता है। अपने आपको आहूत करके बिखरे भटके लोगों को जोड़ना और उनके लिए मार्ग प्रशस्त करना पुल की भाँति जीवन जीने से ही सम्भव है। लेकिन ऐसा सम्भव तभी हो पायेगा जब यथा शक्ति श्रम एवं सात्विक निष्ठा को भी अपनाया जा सके—'केवड़े फूले/पके जामुन, नदी लौटी/पसीना खेत में महका'। इस प्रकार से न केवल व्यक्ति का जीवन सुखद हो जाता है वरन् वैसा ही उल्लास, वैसी ही महक का वातावरण आस-पास बनने लगता है—'रस बरसेगा महुवा/गाँव नहायेगा/तुम भी डूबोगे कचनारों/फागुन आने दो'।

कैलाश जी जीवन यात्रा में समय-समय पर आयी जिम्मेदारियों तथा घर-समाज में जन की विभिन्न भूमिकाओं के प्रति भी बड़े सजग एवं संवेदनशील दिखाई पड़ते हैं। कभी तो वह पुल की तरह जीवन जीने की बात करते हैं तो कभी रिश्ते की डोर से बँधकर माता-पिता, भाई-बहिन, पति-पत्नी, बड़े-बुजुर्ग के रूप में विभिन्न पारिवारिक एवं सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरा करने-कराने का पुरजोर प्रयास करते हैं—'मन/कहीं आँगन/कहीं पर्वत/कहीं जंगल हुआ है/गाँव से बाहर निकलकर/गाँव का पीपल हुआ है'। कितना यथार्थपरक एवं जीवन्त है कवि का यह भावबोध।

घर गाँव की पारदर्शी झाँकी और उससे जुड़ी सांस्कृतिक थाती का निरूपण कैलाश जी की इन रचनाओं की अपनी विशिष्टता है। घर-गाँव की खुशहाली के अनुपम दृश्य-समरसता, प्रेम-स्नेह, मीठे बोल-बतकही, किलकारी, निःस्वार्थ सेवाभाव एवं समर्पण तथा आपसी सम्मान, मान-मर्यादा की सुखद आश्वस्ति-निश्चय ही भारतीय संस्कृति की गौरव गाथा व्यंजित करते लगते हैं—'रोज हमारे घर में मेला और तमाशा/चार-चार हैं देवर भाभी एक बताशा'। ऐसे संयुक्त पारिवारिक माहौल में आपसी सौहार्द, अपनत्व, एवं आनन्द तो स्वतः ही प्रस्फुटित होगा ही, रागात्मक जीवन भी अपनी खरी चमक के साथ दमकेगा ओर एक-दूसरे को भावात्मक स्फूर्ति भी प्रदान करेगा। वहीं कर्तव्यबोध एवं ईमानदारीपूर्ण प्रयासों से उन सभी का जीवन भी सुखमय बनेगा—'चारों धाम हमारे आँगन खेत कियारी/हर की पौड़ी जैसी गूँज रही किलकारी'। जब व्यक्ति अपने निवास स्थल से लेकर कर्मस्थल तक श्रद्धा एवं समर्पण के साथ जुटता है और कर्म को ही पूजा की दृष्टि से देखने लगता है तब सुख-समृद्धि एवं हँसी-ठिठोली से सम्पूर्ण परिवेश सराबोर होने लगता है।

कैलाश जी के काव्यात्मक कौशल से और भी गहरा परिचय पाठक का तब होता है जब वे मानव जीवन एवं उसके हाव-भाव को प्रकृति के माध्यम से प्रकट करते हैं। प्रकृति के हृदयस्पर्शी चित्रांकन से मानव जीवन-चक्र समय के साथ जीवनचर्या तथा मुख-मुद्रा में आये बदलाव, अंग-प्रत्यंगों की अजब-गजब सी हरकतें तथा राग-रंगों में उतार चढ़ाव आदि को व्यक्त करने में बेजोड़ लगते हैं—

जाने/किसके नाम/
हवा बिछाती पीले पत्ते/रोज सुबह से शाम।
टूट रही है/देह सुबह से/उलझ रही आँखें/
फिर बैठी/मुँडेर पर मैना/फुला रही पाँखें/
मेरे आँगन/महुवा फूला/मेरी नींद हराम।

प्रतिदिन पीले पत्तों का सुबह से शाम तक बिछना, मैना का कूकना, महुवा का फूलना तथा प्रेमी की नींद हराम होना प्रकृति के साथ-साथ मानवीय संवेदना तो दर्शाता ही है, प्रकृति और जन-मन के बीच चले आ रहे अटूट बंधन को भी प्रकट करता है। इस बन्धन की बुनावट से प्रेमी के मन को उकेरा है कवि ने जोकि प्रकृति में हुए परिवर्तन के साथ पूरी तरह से मेल खाता लगता है। मानवीय संवेदना एवं प्राकृतिक स्वरूप के इस परस्पर प्रत्यावर्तन में पाठक को वह सब दिखाई-सुनाई पड़ने लगता है जोकि अनुभूति के उस स्तर पर उतरने पर ही संभव है। इससे एक बात तो जाहिर हो ही जाती है कि कवि बाह्य जगत के साथ-साथ मानवीय अन्तर्मन की परतें बखूबी खोलना जानता है—

दर्पण का जी भरा नहीं है/आँख मिलाने से/
रोक नहीं सकता है कोई/फिर मुस्काने से/
अभी मिले हैं/फिर मिलने की/आस लगाये हैं/
मन जैसे/फिर डूब गया है/यादों की गहराई में।

प्रेम की ऐसी पारदर्शी एवं पावन अभिव्यक्ति का अपना आकर्षण है और अपना प्रभाव। 'जोड़ा ताल' में प्रेमी की मनोदशा के चित्रांकन में जैसी गरिमा एवं सादगी दिखाई पड़ती है वैसी ही स्थिति पति-पत्नी के रागात्मक रिश्ते में भी झलकती है। कैलाश जी पति-पत्नी के रिश्ते को जिस अंदाज में कुशलतापूर्वक प्रकट करते हैं उससे हमारी भारतीय संस्कृति की तस्वीर भी दिखाई पड़ने लगती है। पति के परदेश में जाने पर पत्नी जिस प्रकार से उसकी यादों में खोई हुई है और अपनी व्यथा-कथा को प्रकृति के माध्यम से प्रकट करती है वह देखते ही बनता है—

फूला है गलियारे का/कचनार पिया/
तुम हो जैसे/सात समंदर पार पिया/
जलते जंगल की हिरनी/प्यास हमारी/
ओझल झरने की कलकल/याद तुम्हारी/
कहाँ लगी है आग/कहाँ है धार पिया।

पति-पत्नी का रिश्ता जितना गहरा होता है, संवेदना के स्तर पर उतना ही नाजुक भी। जहाँ एक दूसरे के लिए जीवन जीने की प्रतिबद्धता होती है वहीं एक दूसरे की खुशी के लिए अलग हटके कुछ करने का उनमें जज्बा भी होता है। ऐसे बन्धन में बँधे युगल एक-दूसरे की भावनाओं का समादर भी करते हैं। और अपने मन की बात एक-दूसरे से कहने में गुरेज भी नहीं करते—

आज का मौसम कितना प्यारा/कहीं चलो ना जी/
बलिया बक्सर पटना आरा/कहीं चलो ना जी/
बोल रहा है मोर अकेला/आज सबेरे से/
वन में लगा हुआ है मेला/आज सबेरे से/
मेरा भी मन पारा-पारा/कहीं चलो ना जी।

हर रिश्ते की डोर दिल से जुड़ी होती है। ऐसा ही रिश्ता मित्रता का भी होता है—

बिना मिले इतनी बेचैनी/एक-दूसरे की हम खैनी/
पग-पग पर/संगम ही संगम/क्या अँधियारे क्या उजियारे/
सारे रिश्ते छूट गये हैं/जलसे मेले छूट गये हैं/
ले-देकर/बस यही बचे हैं/पागल जैसे साँझ सकारे।

अतीत के घेरे में जब कैलाश जी ले जाते हैं तो लगने लगता है कि हमारी जीवन यात्रा में कहीं कुछ छूटता चला जा रहा है—अब हमें छोटी-छोटी बातों में रस नहीं आता। छोटे-मोटे क्रिया कलाप आकर्षक नहीं लगते। बदलते समय के साथ जीवन जितना जोड़-घटाने पर आधारित हो गया है, जीवनधारा जितनी संकुचित हो गयी है, उससे भी ये छोटी-छोटी बातें अति सामान्य सी लगने लगी हैं—

छोटे-छोटे सुख थे जैसे/समय पूछना घड़ी मिलाना/
चलते-चलते बीच सड़क पर/बाँह पकड़कर याद दिलाना/
धूप ढले/अंजुरी में जूड़े का खिलना/
तारों में चाँद का निकलना/कितना अच्छा लगता था।

कैलाश जी की रचनाओं में इतनी लयात्मकता है, इतनी रागात्मकता है, इतना टटकापन है तथा शब्द और बिम्बों का ऐसा अद्भुत संयोजन है कि उनको बार-बार पढ़ने का मन करता है। गंगा-जमुनी संस्कृति, उसकी बोली-बानी की अपनी मिठास, अलंकृत भाषा, अपनी खाँटी-माटी से जुड़े बिम्ब विधान एवं प्रतीकों का प्रयोग, तरल सहज प्रेषणीयता, उनके गीतों को सरस बना देती हैं। टेक का आवर्तन और अन्तर्वस्तु की अनुगूँज स्वाभाविक रूप से उनके गीतों में व्यंजित होती चलती है। निश्चय ही 'जोड़ा ताल' अपने विशिष्ट रूपाकारों के साथ पाठक के मन में एक विशिष्ट और अपूर्वकृति के रूप में रच बस जाता है।

—प्रियंका चौहान
शोध छात्रा (संस्कृत)
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय
इन्दौर (म.प्र.)

(समीक्षित कृति—जोड़ा ताल, रचयिता—कैलाश गौतम)
'नये—पुराने' के कैलाश गौतम स्मृति अंक से साभार।